जो सकल-विमल केवलज्ञानदर्शन का लोलुप (सर्वथा निर्मल केवलज्ञान और केवलदर्शन की तीव्र अभिलाषावाला-भावनावाला) परम जिनयोगीश्वर... सच्चे दिगम्बर जिन मुनि उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की समाधि प्रगट हुई है। अतीन्द्रिय आनन्द की प्रगट दशा हुई हो, उसे मुनि कहते हैं। अकेले पंच महाव्रत पालन करे, उसे मुनि नहीं कहते। आहाहा! वह **परम जिनयोगीश्वर स्वात्माश्रित...** जितने विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे सब पराश्रित हैं और यह धर्मध्यान, शुक्लध्यान, समाधि निश्चयभक्ति, वह स्वद्रव्य-आश्रित है। स्वद्रव्याश्रित उत्पन्न होता है और विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे परद्रव्याश्रित हैं। आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान... लो! धर्मध्यान को भी स्व-आत्मा के आश्रित कहा। कहीं धर्मध्यान को शुभभाव भी कहा है। मोक्ष अधिकार में। वह धर्मध्यान नहीं है, वह तो व्यवहार से बात की है। उसमें स्वात्माश्रित अकेला चिदानन्द अनन्त आनन्दकन्द प्रभु के आश्रय से, उसके अवलम्बन से.. आहाहा! **परम जिनयोगीश्वर स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान द्वारा...** व्यवहार के विकल्प द्वारा धर्मध्यान नहीं, णमो अरिहंताणं गिने, पंच परमेष्ठी गिने, वह कोई धर्म नहीं है, वह सब तो विकार है, राग है। आहाहा! **निश्चय-धर्मध्यान द्वारा और समस्त विकल्पजाल रहित...** बिल्कुल जिसमें राग की वृत्ति नहीं है, ऐसे **निश्चय-शुक्लध्यान द्वारा—स्वात्मनिष्ठ (निज आत्मा में लीन ऐसी)...** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय शान्तस्वरूप की दृष्टि करके उसमें

लीन होना, इसका नाम यहाँ समाधि कहते हैं। आहाहा! वे बाबा समाधि करते हैं, वह समाधि यहाँ नहीं।

निर्विकल्प परम समाधिरूप... निर्विकल्प परम समाधि। जिसमें राग का अंश नहीं और वीतरागदशा उत्पन्न हो। निर्विकल्पदशा अर्थात् वीतरागदशा उत्पन्न हो, ऐसी **सम्पत्ति के कारणभूत...** परम निर्विकल्प समाधिरूप सम्पत्ति। वह आत्मा की सम्पत्ति। आहाहा! यह पैसा, स्त्री-पुत्र, यह सब धूल की सम्पत्ति है, वह आत्मा की सम्पत्ति नहीं है। आहाहा! यह पैसा, पाँच-पचास करोड़-अरब (मिले), वह सब धूल है। धूल आत्मा की सम्पदा कहाँ से? आत्मा की सम्पदा तो यह है।

निर्विकल्प परम समाधिरूप सम्पत्ति के कारणभूत... आहाहा! **ऐसे उन धर्म-शुक्लध्यानों द्वारा,...** धर्म-शुक्ल (ध्यान) द्वारा... आहाहा! साधन यह कहा। साधन-बाधन कुछ कहा नहीं। उसका साधन, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य—ऐसा नहीं है। सीधे आत्मा आनन्दकन्द प्रभु निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान द्वारा **अखण्ड अद्वैत...** अन्तर में वस्तु में अखण्डता गुण और गुणी के भेद का खण्ड नहीं और अद्वैत एकरूप। वह एकरूप अन्दर सहजात्मस्वरूप **सहज-चिद्विलासलक्षण...** आहाहा! भाषा कम पड़ती है। सहज चिद्विलास आत्मा। जिसमें ज्ञान का विलास है। दुनिया अज्ञान में—राग और द्वेष में विलास करती है। धर्मी ज्ञान का विलास करता है। आहाहा!

सहज चिद्विलास। ज्ञान का विलास ऐसा लक्षण **(अर्थात् अखण्ड अद्वैत स्वाभाविक चैतन्य-विलास जिसका लक्षण है ऐसे), अक्षय आनन्दसागर में मग्न होनेवाले (डूबनेवाले),...** आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा **अक्षय आनन्दसागर...** भगवान अक्षय अतीन्द्रिय आनन्द सागर भरा है। उसमें में **मग्न होनेवाले...** उसमें डूबनेवाले **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख,...** आहाहा! बाह्य क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा सब बाह्य क्रिया है। वह कोई धर्म नहीं है। वह सब पुण्य की क्रिया है। आहाहा! **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख,...** मन-वचन-काया या पाँच इन्द्रियों की प्रवृत्ति की सकल बाह्य क्रियायें; उन बाह्य क्रियाओं से पराङ्मुख है। धर्मध्यान, इन पाँच इन्द्रिय और मन-वचन-काय की क्रिया से पराङ्मुख है।

शाश्वत्रूप से... आहाहा! **(सदा) अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत,...** आहाहा!

निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प आनन्द, निर्विकल्प समकित का आधार, अन्तःक्रिया का आधार भगवान आत्मा है। आहाहा! अन्तःक्रिया का आधार कोई बाह्य चीज़ नहीं है। भगवान भी अन्तःक्रिया का आधार नहीं है। आहाहा! **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख, शाश्वत्रूप से (सदा) अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत,...** आहाहा! निर्विकल्प-विकाररहित क्रिया का आधार भगवान आत्मा है। इस धर्म की क्रिया का आधार आत्मा है। धर्म वीतरागी परिणति है। वीतरागी परिणति का—अन्तःक्रिया का आधार आत्मा है। आहाहा!

शाश्वत्रूप से (सदा) अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत, सदाशिवस्वरूप आत्मा को... उस अन्तःक्रिया का आधार... आहाहा! अन्तर निर्मल आत्मस्वभाव को अवलम्बन कर निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प वीतरागता—ऐसी जो **शाश्वत्रूप से (सदा) अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत, सदाशिवस्वरूप आत्मा...** आहाहा! सदाशिवस्वरूप। त्रिकाली भगवान तो शिवस्वरूप है। उसमें राग नहीं है, संसार नहीं, पुण्य-पाप नहीं है। प्रभु तो अन्दर सदाशिवस्वरूप है। निश्चय से सम्यग्दर्शन का विषय सदाशिवरूप है। आहाहा! वह **सदाशिवस्वरूप आत्मा...** उसे धर्मी **ध्याता है,... निरन्तर ध्याता है,...** आहाहा! अब ऐसी बात सुनी न हो। बाह्यक्रिया में धर्म मानकर बैठे। पूजा, भक्ति, व्रत, तप, यात्रा में धर्म है। वह रागक्रिया है, संसार है। संसारक्रिया का वह आधार है। अन्तःक्रिया का आधार तो सदाशिवस्वरूप आत्मा है। आहाहा! उसे **निरन्तर ध्याता है,...** उसे निरन्तर ध्यान में ध्याता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

उसे वास्तव में जिनेश्वर के शासन से निष्पन्न हुआ,... ऐसे जीव को **जिनेश्वर के शासन से निष्पन्न हुआ, नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त....** नित्यशुद्ध... आहाहा! त्रिकाली भगवान तो शुद्ध है। और त्रिगुप्ति गुप्त। मन-वचन-काया की गुप्ति से गुप्त है। आहाहा! **गुप्त ऐसी परम समाधि जिसका लक्षण है...** आहाहा! **ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है।** उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो सबेरे एक लेकर बैठे। बस, सामायिक हो गयी। आहाहा!

नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त ऐसी परम समाधि... शान्ति, वीतरागता, अकषायता, शान्तरस का झरना, आनन्द का झरना... आहाहा! वह समाधि है। वह **जिसका लक्षण है,**

ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है। उसे सच्ची सामायिक है। आहाहा! शाश्वत् सामायिक है। है तो पर्याय। कायम रहनेवाली है। आहाहा! शाश्वत् ऐसा भगवान शाश्वत् आत्मा, उसके अवलम्बन से—उसके आश्रय से शान्ति और वीतरागता उत्पन्न हुई, उसे सामायिक कहते हैं। बाकी सब सामायिक व्यर्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आसन बिछाकर बैठे और सामायिक का पाठ बोले, वह सामायिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : आसन बिछाकर बैठे, णमो अरिहंताणं कहे, इरिया वहरोविया, सामायिक हो गयी। धूल भी सामायिक नहीं है।

मुमुक्षु : पहले आसन बिछाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आसन बिछाने में सामायिक नहीं है। आसन यहाँ अन्दर में बिछाये। आत्मा आनन्दस्वरूप का आसन विस्तार करके, उसमें लीन होकर बैठे, उसमें बैठे, उसमें लीन हो, उसे जैनशासन में सामायिक कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यमति जैन में मिले हुए भी दूसरे को सामायिक कहें, वे जैन नहीं है; वे तो सब अन्यमति है। आहाहा! ऐसा आया या नहीं?—कि जैनशासन से निष्पन्न हुआ। ऐसे जिनशासन से उत्पन्न हुए।

नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त... मन-वचन-काया से गुप्त ऐसा भगवान अन्दर आत्मा, उसमें लीन हुआ। **परम समाधि जिसका लक्षण है...** किसका? इस सामायिक व्रत का। सामायिक व्रत का लक्षण यह। सच्चा सामायिक व्रत। शाश्वत् अर्थात् सच्चा। सच्चे सामायिक व्रत का यह लक्षण कि परमसमाधि जिसका लक्षण है। आहाहा! ऐसी सामायिक कभी सुनी भी नहीं होगी और हो गये सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण। आहाहा!

श्लोक-२१९

(मंदाक्रान्ता)

शुक्लध्याने परिणत-मतिः शुद्धरत्नत्रयात्मा,
धर्मध्याने ऽप्यनघपरमानन्दतत्त्वाश्रिते ऽस्मिन् ।
प्राप्नोत्युच्चै-रपगत-महद्दुःखजालं विशालं,
भेदाभावात् किमपि भविनां वाङ्मनोमार्गदूरम् ।।२१९।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ परमसमाध्यधिकारो नवमः श्रुतस्कन्धः ।

[अब इस परम-समाधि अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

(वीरछन्द)

निष्पाप परम सुखरूप तत्त्व के आश्रित जो अन्तिम द्वय ध्यान।
बुद्धि परिणमित उनमें जिसकी रत्नत्रययुत जीव महान॥
प्राप्त करे वह महत् तत्त्व को रहित सदा जो दुःख समूह।
भेदों का जिसमें अभाव है अतः वचन मनपथ से दूर॥२१९॥

श्लोकार्थ : इस अनघ (निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है, ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव ऐसे किसी विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है कि जिसमें से (-जिस तत्त्व में से) महा दुःखसमूह नष्ट हुआ है और जो (तत्त्व) भेदों के अभाव के कारण जीवों को वचन तथा मन के मार्ग से दूर है॥२१९॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमसमाध्यधिकार नाम का नववाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक- २१९ पर प्रवचन

[अब इस परम-समाधि अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

अन्तिम श्लोक।

शुक्लध्याने परिणत-मतिः शुद्धरत्नत्रयात्मा,
धर्मध्यानेऽप्यनघपरमानन्दतत्त्वाश्रितेऽस्मिन्।
प्राप्नोत्युच्चै-रपगत-महद्दुःखजालं विशालं,
भेदाभावात् किमपि भविनां वाङ्मनोमार्गदूरम्।।२१९।।

आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ है। ये श्लोक (गाथायें) कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। इनकी टीका फिर पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। उसे सामायिक कहते हैं, अन्तर में परम शान्ति और समाधि उत्पन्न हो; विकल्प उत्पन्न न हो, राग की उत्पत्ति न हो, उसे सामायिक कहा जाता है। बाकी तो व्यवहार संसार है। आहाहा! इस श्लोक का अर्थ।

श्लोकार्थ : इस अनघ (निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित... आहाहा! कहते हैं कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान उत्पन्न किसके आश्रय से होते हैं? किसके आश्रय से उत्पन्न होते हैं? धर्म किसके आश्रय से उत्पन्न होता है?—कि परमानन्दमय तत्त्व। आहाहा! निर्दोष परमानन्दमय तत्त्व भगवान त्रिकाली। आहाहा! निर्दोष परमानन्दमय तत्त्व आत्मा। आहाहा! उसके आश्रित धर्मध्यान। उसके आश्रित धर्मध्यान... आहाहा!

शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है... स्व-आत्मा के आश्रय से- त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु के आश्रय से जिसकी बुद्धि धर्मध्यान और शुक्लध्यान में परिणमी है। **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** आहाहा! भाषा कम पड़ती है इतने... आहाहा! **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** आहाहा! कैसे? —कि **परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित...** परमानन्दमय आत्मतत्त्व के आश्रित **धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है...** आहाहा! **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव। रत्नत्रय तीनों—दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

ऐसे किसी विशाल तत्त्व को... ऐसे किसी विशाल तत्त्व को **अत्यन्त प्राप्त करता**

है... अन्दर आत्मा। आत्मा विशाल तत्त्व है। अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त गुण। अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड है। ऐसा विशाल तत्त्व। आहाहा! जो स्व के आश्रय से रहता है, उस ऐसे विशाल तत्त्व को प्राप्त करता है। आहाहा! कोई क्रियाकाण्ड करने से, दया, दान, व्रत करने से यह सामायिक और धर्म होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल में होता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ काल ही लागू नहीं पड़ता। त्रिकाल में भगवान त्रिकाल स्वरूप है। त्रिकाल निर्मलानन्द परमानन्द... यह बात की न?

(निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित... त्रिकाली। आहाहा! **धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है...** आहाहा! **ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव...** वह शुद्धरत्नत्रयस्वरूप जीव **ऐसे किसी विशाल तत्त्व को...** ऐसे किसी अर्थात् आत्मा। **विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है...** आहाहा! वह विशाल तत्त्व अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर भगवान, अनन्त-अनन्त गुण से भरा हुआ भगवान है, उसे समकिती प्राप्त करता है। आहाहा! **विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है...** आहाहा! **कि जिसमें से (-जिस तत्त्व में से) महा दुःखसमूह नष्ट हुआ है...** आहाहा! उस भगवान आत्मा के—तत्त्व के आश्रय में स्थित है। अन्दर सामायिक में उसे तो महादुःखसमूह नष्ट हुआ है। महादुःख का समूह नाश हुआ है। आहाहा!

और जो (तत्त्व) भेदों के अभाव के कारण जीवों को वचन तथा मन के मार्ग से दूर है। क्या कहते हैं? यह भगवान तत्त्व अन्दर ऐसा है (कि) मन-वचन से दूर है, क्योंकि भेद का अभाव है। पूरा अभेद तत्त्व है। पूर्णानन्द पूर्णज्ञान से अभेद है। ऐसे अभेद तत्त्व में... आहाहा! **भेदों के अभाव के कारण जीवों को...** भव्यों को, लायक जीवों को **वचन तथा मन के मार्ग से दूर है।** मन और वचन के मार्ग से भव्य जीव को सामायिक दूर है। आहाहा! ऐसा कभी सुना भी नहीं होगा और हम सामायिक करते हैं। ऐसी सामायिक। इसने सामायिक की, इसने इतनी की, इसने इतनी की। आहाहा!

एक सामायिक किसे कहना? जो परमानन्दमूर्ति प्रभु तत्त्वविलासी का आश्रय करके जिसमें लीन हो, और जिसमें विकार का विकल्प उत्पन्न न हो, उस दशा को यहाँ सामायिक कहा जाता है। आहाहा! यह व्यवहार सामायिक करे, वह क्या होगी? पराश्रित,

परन्तु उसका कुछ कारण होगा न ? उससे अन्दर प्राप्त होगा या नहीं ? करते-करते अधिक करे तो थोड़ा मिले न ? अधिक जहर खाये तो कुछ अमृत मिले ? आहाहा ! व्यवहार सामायिक तो जहर है, राग है। आहाहा ! राग से अमृत आत्मा मिले (-ऐसा) तीन काल में नहीं मिलता।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह... मुनि को तो देहमात्र ही होती है। मुनि को वस्त्र-पात्र नहीं होते। वस्त्र-पात्र होवें, वे मुनि नहीं है। आहाहा ! यह... थे न, वह किसी मुनि ने लिखा है। मुनि किसे कहना ?... कुछ लिखा है, उसका बड़ा विरोध किया है। मुनि कहाँ है ? मुनि तो वस्त्र-पात्ररहित, जंगल में रहते हैं और अन्तरध्यान में आनन्द में रहते हैं और नग्नदशा होती है। अन्तर ध्यान में, आनन्द में रहें, इसका नाम मुनि है। आहाहा ! मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता, आहार लाने को पात्र का टुकड़ा नहीं होता। आहाहा ! उन्हें मुनि कहा जाता है। कोई लिख डाले मुनि, इसलिए फिर टीका (आलोचना) करे। आहाहा !

देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... देखा ? **ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमसमाध्यधिकार नाम का नववाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** लो ! नौवाँ अधिकार पूरा हुआ।

— १० —

परम-भक्ति अधिकार

गाथा-१३४

अथ सम्प्रति हि भक्त्यधिकार उच्यते।

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं।।१३४।।

सम्यक्त्वज्ञानचरणेषु यो भक्तिं करोति श्रावकः श्रमणः।
तस्य तु निर्वृत्तिभक्तिर्भवतीति जिनैः प्रज्ञप्तम्।।१३४।।

रत्नत्रयस्वरूपाख्यानमेतत्। चतुर्गतिसन्सारपरिभ्रमणकारणतीव्रमिथ्यात्वकर्मप्रकृतिप्रतिपक्षनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानावबोधाचरणात्मकेषु शुद्धरत्नत्रयपरिणामेषु भजनं भक्तिराराधनेत्यर्थः। एकादशपदेषु श्रावकेषु जघन्याः षट्, मध्यमास्त्रयः, उत्तमौ द्वौ च; एते सर्वे शुद्धरत्नत्रयभक्तिं कुर्वन्ति। अथ भवभयभीरवः परमनैष्कर्म्यवृत्तयः परमतपोधनाश्च रत्नत्रयभक्तिं कुर्वन्ति। तेषां परमश्रावकाणां परमतपोधनानां च जिनोत्तमैः प्रज्ञप्ता निर्वृत्तिभक्तिरपुनर्भवपुरन्ध्रिकासेवा भवतीति।

अब भक्ति अधिकार कहा जाता है।

सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र की श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे॥१३४॥

अन्वयार्थः [यः श्रावकः श्रमणः] जो श्रावक अथवा श्रमण [सम्यक्त्वज्ञानचरणेषु] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की [भक्तिं] भक्ति [करोति] करता है, [तस्य तु] उसे [निर्वृत्तिभक्तिः भवति] निर्वृत्तिभक्ति (निर्वाण की भक्ति) है [इति] ऐसा [जिनैः प्रज्ञप्तम्] जिनों ने कहा है।

टीका : यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत तीव्र मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति से प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-अवबोध-आचरणस्वरूपशुद्ध-रत्नत्रय-परिणामों का जो भजन वह भक्ति है; आराधना ऐसा उसका अर्थ है। *एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं, मध्यम तीन हैं, तथा उत्तम दो हैं।—यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। तथा भवभयभीरु, परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले (परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति—अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा—वर्तती है।

गाथा-१३४ पर प्रवचन

१०वाँ। 'परमभक्ति अधिकार।' भाषा क्या है ? परम भक्ति। और वह परमभक्ति चौथे गुणस्थान से भी होती है। अन्दर ऐसा कहेंगे। आहाहा! परमभक्ति, वह भगवान की भक्ति ? वह भक्ति नहीं। यह आगे कहेंगे। सिद्ध की भक्ति, वह व्यवहार भक्ति है। सिद्धपरमात्मा की भक्ति व्यवहार पुण्य है, राग है; धर्म नहीं। आहाहा! यह तो परमभक्ति; और वह भी श्रावक तथा तथा मुनि दोनों को होती है। कोई ऐसा कहे कि परमभक्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान चौथे गुणस्थान में होती है, परन्तु आचरण नहीं होता, स्वरूपाचरण नहीं होता। यहाँ यह कहते हैं कि उसे श्रद्धान, अवबोध और आचरण-स्वरूप शुद्धरत्नत्रय परिणाम होते हैं। आहाहा!

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं।।१३४।।

---

* एकादशपदी=जिनके ग्यारह पद (गुणानुसार भूमिकाएँ) हैं ऐसे। [श्रावकों के निम्नानुसार ग्यारह पद हैं—(१) दर्शन, (२) व्रत, (३) सामायिक, (४) प्रोषधोपवास, (५) सचित्तत्याग, (६) रात्रिभोजनत्याग, (७) ब्रह्मचर्य, (८) आरम्भत्याग, (९) परिग्रहत्याग, (१०) अनुमतित्याग और (११) उद्दिष्टाहारत्याग। उनमें छठवें पद तक (छठवीं प्रतिमा तक) जघन्य श्रावक हैं, नौवें पद तक मध्यम श्रावक हैं और दसवें तथा ग्यारहवें पद पर हों, वे उत्तम श्रावक हैं। यह सब पद सम्यक्त्वपूर्वक, हठ रहित सहज दशा के हैं, यह ध्यान में रखनेयोग्य हैं।]

जिनेश्वर ने कहा है—ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने वजन देकर कहा है कि जिनेश्वर ने ऐसा कहा है कि जो सच्चे श्रावक हों, उन्हें समकित सामायिक होते हैं। आत्मा की भक्ति होती है। समकित की, ज्ञान की और आचरण की अन्दर तीन भक्ति उन्हें होती है। आहाहा! ऐसा जिनेश्वर ने कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य नाम लेकर कहते हैं। आहाहा! नीचे हरिगीत।

सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र की श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे॥१३४॥

उसे निर्वाणभक्ति कहा जाता है। निर्वाणभक्ति श्रावक भी करता है। सच्चा श्रावक होता हो वह।

मुमुक्षु : श्रावक का नाम तो पहले लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हैं, श्रावक और श्रमण। दोनों को भक्ति होती है। दोनों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आचरण होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आचरण दोनों को होता है। आहाहा! आगे आयेगा।

टीका : यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। यह है न? **चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत...** चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत **तीव्र मिथ्यात्वकर्म...** तीव्र मिथ्यात्व कर्म की **प्रकृति से प्रतिपक्ष...** आहाहा! मिथ्यात्व **प्रकृति से प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के...** निज परमात्मतत्त्व जो आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा परमात्मा। उसकी सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक् अवबोध-ज्ञान और सम्यक् आचरणस्वरूप। देखो! आचरण। आचरण लिया है। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि समकिती को चौथे (गुणस्थान) में शुद्धोपयोग नहीं होता, पाँचवें में शुद्धोपयोग नहीं होता, छठवें में मुनि को होता है। वह तो मुनि के योग्य शुद्धोपयोग होता है, परन्तु चौथे-पाँचवें में उसके योग्य शुद्धोपयोग होता है। आहाहा!

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत तीव्र मिथ्यात्वकर्म की **प्रकृति से प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के...** भक्ति में पहले परमात्मा वीतराग और केवली नहीं लिये। बाद में सिद्ध लेंगे। व्यवहार, विकल्प। **परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-...** श्रावक को भी परम तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, उसे भी **अवबोध...** अर्थात्

सम्यग्ज्ञान, और उसे भी सम्यक् **आचरणस्वरूप...** आहाहा! देखो! चौथे गुणस्थान में अनुभूति नहीं होती - ऐसा विद्यासागर कहते हैं। अनुभूति सातवें में होती है। (-ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-अवबोध-आचरणस्वरूप...** श्रावक और मुनि दोनों को। आहाहा! **रत्नत्रय-परिणामों का...** शुद्धरत्नत्रय सम्यक् निश्चय, शुद्ध परमपारिणामिकस्वभाव की श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका परिणमन—इन शुद्ध रत्नत्रय परिणामों का **जो भजन...** इन **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन वह भक्ति है;...** आहाहा! मिथ्यात्व से विरुद्ध **निज परमात्मतत्त्व के...** निज परमात्मतत्त्व का सम्यग्दर्शन-श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान-अवबोध और सम्यक् आचरणस्वरूप। आहाहा! यहाँ तो आचरण शब्द लिया है। श्रावक को भी आचरण होता है, चारित्र होता है - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! दूसरी जगह आता है, जयचन्द्र (जयसेन) की टीका में। श्रावक को शुद्धोपयोग नहीं होता। वह तो मुनि का जो शुद्धोपयोग है, वह नहीं होता। परन्तु उसके योग्य जो है, ऐसा आचरणरूप उपयोग उसे होता है। आहाहा! यह आचरणरूप शुद्धोपयोग की बात है। इस आचरण में शुद्धोपयोगरूप शब्द है। आहाहा!

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-(सम्यक्) अवबोध-(सम्यक्) आचरणस्वरूप... किसे? दोनों को। श्रावक और साधु। आहाहा! जिसे अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आचरण नहीं, वह श्रावक ही नहीं। वह वाड़ा का सावज कहलाता है। आहाहा! कठिन लगे! एक-एक बात में अन्तर। पद्मप्रभमलधारिदेव को कहने के लिये शब्द कम पड़ते हैं। किस प्रकार कहना इस प्रभु को? अन्दर भगवान महा विशाल... है न? कल आया था। विशाल तत्त्व, महा विशाल तत्त्व। जिसमें अनन्त-अनन्त गुण और स्वभाव पड़े हैं, ऐसे तत्त्व को, **निज परमात्मतत्त्व के...** आहाहा! **सम्यक् श्रद्धान-...** उसके सन्मुख और स्वाश्रय की श्रद्धा, उसके सन्मुख का स्वाश्रय का ज्ञान, उसके सन्मुख का स्वाश्रय का आचरण। आहाहा!

वह **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों...** तीनों को शुद्धरत्नत्रय परिणाम कहा। देखा? श्रावक को आचरण में भी शुद्धरत्नत्रय परिणाम कहा। आहाहा! पाँचवें गुणस्थान में श्रावक गृहस्थाश्रम में होता है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान यदि हो तो शुद्धरत्नत्रय परिणाम कहा।

आहाहा! और **जो भजन वह भक्ति है;...** उस शुद्धरत्नत्रय का भजन, एकाग्रता, वह भक्ति है। आहाहा! श्रावक को भी होती है, मुनि को भी होती है। सब कहते हैं, साधु को होती है, श्रावक को गृहस्थाश्रम में नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो श्रावक के ग्यारह भेद है न? ग्यारह प्रतिमा। ग्यारह प्रतिमा, उनमें यह आचरण होता है। ग्यारह प्रतिमा में पहली प्रतिमा सम्यक् प्रतिमा। भले पाँचवाँ गुणस्थान हो। उसे भी श्रद्धान-अवबोध और आचरणस्वरूप होता है। अन्दर चारित्र का आचरण होता है। आहाहा!

शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन... भगवान का भजन नहीं। शुद्धरत्नत्रय का भजन। आहाहा! उसका **जो भजन, वह भक्ति है;...** आहाहा! इसका नाम भक्ति। **आराधना ऐसा उसका अर्थ है।** आराधना। निज परमात्मतत्त्व की आराधना करना, ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! निजपरमात्मतत्त्व की आराधना, भजन, भक्ति और आराधना—ऐसा अर्थ है। आहाहा! अब कहते हैं कि श्रावक को ग्यारह प्रतिमाएँ होती हैं।

एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं,... प्रत्येक को चारित्रभक्ति होती है। दर्शन-ज्ञान-चारित्रभक्ति प्रत्येक को होती है। **एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं, मध्यम तीन हैं, तथा उत्तम दो हैं।—यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** देखो, भाषा! यहाँ तो स्पष्ट बात ली है। **यह सब...** पहली प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमा तक **सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! श्रावक अर्थात् कहीं वाडा में पड़े हैं, वे श्रावक कहाँ सच्चे हैं? वाडा में रहे और पाँच श्रावक हैं। श्रावक तो अलग चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें चौथे गुणस्थानवाला गर्भित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाता है। वह श्रावक आ जाता है। ऐसे दर्शनप्रतिमा पाँचवेंवाले को होती है, परन्तु चौथे गुणस्थानवाला भी आ जाता है। अनन्तानुबन्धी के अभाव का आचरण है न?

मुमुक्षु : शुद्धरत्नत्रय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह शुद्धरत्नत्रय है। कलश की टीका में लिखा है। वह इस कलश टीका का प्रश्न है कि तुम बात समकित की करते हो और मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तीनों हैं। परन्तु समकित में तीनों आ जाते हैं। कलश टीका में है। अनन्तानुबन्धी

का अभाव, उतना आचरण भी आ जाता है। उतना वह चारित्र का अंश है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी प्रकृति चारित्र की है। उसके भाग का अभाव, इसका नाम चारित्र अंश है। संयम नाम नहीं पड़ता। पाँचवें में, चौथे में। यहाँ तो ग्यारह प्रतिमावाले को, ग्यारह प्रतिमावाले को सब होता है। **शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** ग्यारह प्रतिमावाला...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)